नियमसार, १२६ कलश। प्रतिक्रमण का अन्तिम कलश।

यस्य प्रतिक्रमण-मेव सदा मुमुक्षो-
र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः।
तस्मै नमः सकल-संयम-भूषणाय,
श्रीवीरनन्दि-मुनि-नामधराय नित्यम्।।१२६।।

अपने गुरु को वन्दन करते हैं। गुरु कैसे होते हैं? निर्ग्रन्थ मुनि।

[श्लोकार्थः] मुमुक्षु ऐसे जिन्हें (-मोक्षार्थी ऐसे जिन वीरनन्दि मुनि को)... ये एकदम मोक्षार्थी कहते हैं। आहाहा! महाव्रतधारी मुनि स्वयं मुनि हैं, वे दूसरे मुनि के लिए ऐसा पहिचानकर कहते हैं। दोनों छद्मस्थ हैं, दोनों पंचम काल के जीव हैं। आहाहा! अपने जो गुरु हैं, वे कैसे हैं? मोक्षार्थी। **सदा प्रतिक्रमण ही है...** उन्हें तो सदा प्रतिक्रमण ही है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में सदा उनकी रमणता ही है। यह प्रतिक्रमण। राग के विकल्प से निवृत्ति, कल्पनामात्र से निवृत्ति; निष्कर्म, निर्विकल्प, चैतन्यस्वरूप में-अतीन्द्रिय

आनन्द में रमणता, इसका नाम निश्चय-सच्चा प्रतिक्रमण है। यहाँ तो प्रतिक्रमण की यह व्याख्या है। मुनिराज ऐसा प्रतिक्रमण करते हैं। आहाहा!

सदा प्रतिक्रमण ही है... आहाहा! ये अपने गुरु जो ऐसे हैं, यह इनके ख्याल में है। छद्मस्थ भी दूसरे जीव को अपने ज्ञान में जान लेता है। जान न ले, दूसरे को न पहिचान ले - ऐसा नहीं है। आहाहा! कहाँ तक? कि वह तो **सदा प्रतिक्रमण ही है...** वहाँ तक। आहाहा! वीरनन्दि मुनि को सदा (प्रतिक्रमण ही) है। नग्न दिगम्बर अन्दर में में आत्मा अत्यन्त आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसमें जिनकी रमत-रमणता है, एकाग्रता है, उन्हें सदा प्रतिक्रमण ही है। आहाहा! मुनिराज दूसरे मुनि को इस प्रकार से पहिचानकर उन्हें नमस्कार करते हैं। आहाहा! नमस्कार करनेयोग्य मुनि कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या है। आहाहा!

और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण बिल्कुल नहीं है,... आहाहा! वीरनन्दि मुनि महाराज दिगम्बर सन्त हैं उस समय, उनकी उपस्थिति में **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण...** है नहीं। आहाहा! जिन्हें एक विकल्प का कण भी नहीं है। निर्विकल्प आनन्द में रमण करते हुए सदा उन्हें प्रतिक्रमण ही है। आहाहा! गजब बात है। छद्मस्थ मुनि, छद्मस्थ मुनि को पंच महाव्रतधारी इस प्रकार से कहे, इस प्रकार से बोले, वह सत्य है। इसमें झूठ का जरा भी अंश नहीं है। आहाहा! ऐसे उन मुनि को **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण...** नहीं है। विकल्पमात्र उठे, वह अप्रतिक्रमण है। आहहा! चाहे तो पाप का मिच्छामि दुक्कडम् विकल्प उठे, वह भी अप्रतिक्रमण है। वह प्रतिक्रमण नहीं है। वह अणुमात्र भी जिन्हें अप्रतिक्रमण नहीं है और सदा प्रतिक्रमण अस्ति है। अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण नहीं है। आहाहा!

देखो, मुनि की दशा! एक मुनि, दूसरे मुनि को किस प्रकार पहिचानकर वन्दन करते हैं। आहाहा! पाँचवाँ काल है, ऐसे निश्चय पहिचाना नहीं जाता, अपने तो व्यवहार करें, उससे आचरण होगा—इस व्रत की तो इसमें गन्ध भी नहीं ली। आहाहा! अन्दर भगवान विराजता है। अत्यन्त विकल्प की वृत्तिरहित तत्त्व अन्दर है। परमेश्वर भगवानस्वरूप आत्मा में जिनका हमेशा.. सदा.. ऐसा कहा न? सदा उसमें रमणता है। आहाहा! देखो! यह योगफल। प्रतिक्रमण के योगफल का श्लोक। कितनी इनके ज्ञान में दूसरे की बात (आती है)! दूसरे मुनि को जान लिया है और दूसरे मुनि किस प्रकार के कैसे हैं, (यह

पहिचान लिया है)। आहाहा! यह हो सकता है, जाना जा सकता है और यह स्थिति भी हो सकती है—ऐसी दो बातें सिद्ध करते हैं। पंचम काल में भी सदा प्रतिक्रमण हो सकता है। आहाहा! सदा यह प्रतिक्रमण, हों! मन्द (राग) वह नहीं।

अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, ज्ञान का पिण्ड, अकेला ज्ञानस्वभाव, अनादि-अनन्त ध्रुव, उस ज्ञानस्वभाव में जिसकी हमेशा कायम रमणता है, जिसमें अन्दर रमणता कायम है, सदा उसमें ही रमते हैं। **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण...** नहीं है। आहाहा! धन्य अवतार! मुनिपना ऐसा होता है। मुनिपना कैसा होता है? भाई! आहाहा!

जिन्हें **सदा प्रतिक्रमण ही है...** आहाहा! **प्रतिक्रमण ही है...** प्रभु! परन्तु वे छद्मस्थ हैं न। भले छद्मस्थ हों, परन्तु वे आनन्द में रमते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द की घूटें पीते हैं। वह निर्विकल्प आनन्द के रस का रसीला अतीन्द्रिय आनन्द लेते हैं। आहाहा! उन्हें यहाँ सदा प्रतिक्रमण कहा जाता है। सवेरे भी सूक्ष्म था, यह भी वापस और सूक्ष्म आया। आहाहा! सवेरे नहीं थे, नहीं? अभी आये? सवेरे बहुत सरस था। आहाहा!

पूरा संसार उथला डाले और भगवान पूर्णानन्द के नाथ का विकास करके विलास रमे, विलास। विकास करके विलास में रमे। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय वीतरागता, अतीन्द्रिय शान्ति में जिनकी रमणता जम गयी है, वे सदा प्रतिक्रमणमय हैं। यह प्रतिक्रमण कहलाता है। **और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,...** आहाहा! है? **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,...** आहाहा! यह पंचम काल के साधु, पंचम काल के दिगम्बर सन्त। आहाहा! परमेश्वर के जैसे, परमेश्वर तुल्य (हैं)। आहाहा!

जिन्हें **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,...** आहाहा! धन्य अवतार!! वीतरागस्वरूप से भगवान विराजता है। वीतरागमूर्ति परमात्मा स्वयं है। उसमें जिसकी अन्तर एकाग्रता जमी है। **और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,...** सदा प्रतिक्रमण में ही जिनकी रमणता है। आहाहा! उनकी पर्याय को देख-जान ली है। छद्मस्थ मुनि ने उनकी पर्याय को देख लिया। आहाहा! ज्ञान क्या काम न करे? ज्ञान क्या काम न करे? आहाहा! मुनि की निर्विकल्प दशा, सदा प्रतिक्रमणमय दशा है, उसे परख लिया है। ऐसी जिनकी ज्ञान की विचिक्षणता प्रगट हुई है और सामनेवाले को परख लिया है। आहाहा! ओहोहो! पंचम काल वहाँ बाधक नहीं है कि पंचम काल है, ऐसा मुनिपना अभी

नहीं होता। अभी दूसरे का निश्चय जाना नहीं जा सकता - अभी ऐसा (लोग) कहते हैं। निश्चय जाना नहीं जा सकता। व्यवहार करो। अरे! प्रभु! क्या हो?

मुनिराज तो पुकार करते हैं कि मेरे गुरु जो वीरनन्दि आचार्य हैं, उन्हें मैं सदा प्रतिक्रमणमय देखता हूँ। उनमें अप्रतिक्रमण बिल्कुल नहीं देखता। आहाहा! प्रभु! वे छद्मस्थ है न! पंचम काल के प्राणी (है), भगवान के बाद तो हजार वर्ष बाद हुए हैं न? भले हुए हों। आहाहा! आत्मा को वर्ष कहाँ लागू पड़ते हैं? भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण से विराजमान चैतन्य-चमत्कारी वस्तु, वह चमत्कारी वस्तु है। वह क्षण में चमत्कार होने से पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा! ऐसी दशा प्राप्त को...

कहते हैं, **सकलसंयमरूपी भूषण के धारण करनेवाले...** आहाहा! वे गुरु वीरनन्दि **सकलसंयमरूपी भूषण...** अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में रमणतारूपी संयम। सं अर्थात् सम्यक्पूर्वक, सम्यग्दर्शनपूर्वक; यम अर्थात् जिनकी रमणता है। आहाहा! ऐसे **धारण करनेवाले श्री वीरनन्दि नाम के मुनि को नित्य नमस्कार हो।** आहाहा! प्रमोद आया है। मुनिराज को भी प्रमोद आया है। आहाहा! वीरनन्दि गुरु को पहिचानकर (कहते हैं) ऐसे हैं, ऐसे हैं। आहाहा! उन्हें **नित्य नमस्कार हो।** उन्हें हमेशा नमस्कार ही है। आहाहा! यह अधिकार पूरा किया। यह प्रतिक्रमण का अधिकार पूरा हुआ।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) निश्चयप्रतिक्रमणाधिकार नाम का पाँचवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ। आहाहा! ऐसा तो सुना भी नहीं होगा। आहाहा!

(संवत्) १९८० के वर्ष में बोटाद में चातुर्मास था न? ५६ वर्ष हुए। वहाँ ठाकरसीभाई थे। बीसाश्रीमाली ठाकरसीभाई। उनका लड़का वहाँ है। अहमदाबाद में दुकान है और उसके छोटे भाई का लड़का अमृतलाल बड़ा पण्डित है। तब ऐसी बात होने पर कहा, भाई! आत्मा का अनुभव ऐसी चीज़ है। तब (वह) कहता है - और अनुभव कैसा? यह कहाँ से लाए? ऐसा कहता था।

मुमुक्षु : वह तो ऐसा कहता था कि अनुभव जैन में कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और मूलचन्दजी कहते थे। वह तो ठाकरसीभाई थे, उनका लड़का भूरोभाई है। वहाँ अपना मन्दिर है न ? अहमदाबाद में खाडिया मन्दिर के सामने दुकान है। वह कहता था। ऐसा यह कहाँ से लाये ? आहाहा ! अनुभव कहाँ से ? यह उसके पिता कहते थे और यह तो मूलचन्दजी कहते, अनुभव और आत्मा में कैसा ? आत्मा को और अनुभव, यह क्या ? और कहलाये बड़े जैन के बैरिस्टर। जैन के बैरिस्टर कहलाये और आत्मा के अनुभव की खबर नहीं। वे इन हिम्मतभाई के गुरु कहलाये। इनके गाँव के। नाग्नेश।

(संवत्) १९७१ के वर्ष एक बार मैंने धर्मास्तिकाय का प्रश्न किया। कहा, धर्मास्तिकाय के गुण कितने ? दो, गति और अरूपी। आहाहा ! अरे रे ! सब अन्ध खाते हो गया। कहलाये जैन के बैरिस्टर। धर्मास्तिकाय के दो गुण !

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि धर्मास्ति एक द्रव्य के अनन्त गुण हैं। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पार नहीं, इतने गुण हैं। लोगों को आगे उच्च श्रेणी में जरा भी जाना नहीं। अपने को धर्म मानना है, मनवाना है और उसमें कल्याण जानते हैं। आहाहा !

यह मुनिराज ऐसा कहते हैं... आहाहा ! अब प्रत्याख्यान की बात आयी। सच्चा प्रत्याख्यान किसे कहना ? ऐसे हाथ जोड़कर प्रत्याख्यान करते हैं न ? प्रत्याख्यान कराओ। हमारे यह खाया नहीं जाता, हमारे रस नहीं लिया जाता, यह प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा ! प्रत्याख्यान का प्रकार ही अलग है। वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ? यह निश्चय प्रत्याख्यान का अधिकार है।

— ६ —

निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार

गाथा-९५

अथेदानीं सकलप्रव्रज्यासाम्राज्यविजयवैजयन्तीपृथुलदण्डमण्डनायमानसकल-कर्मनिर्जरा-हेतुभूतनि:श्रेयसनिश्रेणीभूतमुक्तिभामिनीप्रथमदर्शनोपायनीभूतनिश्चय-प्रत्याख्यानाधिकार: कथ्यते। तद्यथा ह्न अत्र सूत्रावतार: ह्न

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स।।९५।।

मुक्त्वा सकलजल्पमनागतशुभाशुभनिवारणं कृत्वा।
आत्मानं यो ध्यायति प्रत्याख्यानं भवेत्तस्य।।९५।।

निश्चयनयप्रत्याख्यानस्वरूपाख्यानमेतत्। अत्र व्यवहारनयादेशात् मुनयो भुक्त्वा दैनं दैनं पुनर्योग्यकालपर्यन्तं प्रत्यादिष्टान्नपानखाद्यलेह्यरुचय:, एतद् व्यवहारप्रत्याख्यान-स्वरूपम्।

निश्चयनयत: प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तवचनरचनाप्रपञ्चपरिहारेण शुद्धज्ञानभावनासेवा - प्रसादादभिनवशुभाशुभद्रव्यभावकर्मणां सम्वर: प्रत्याख्यानम्। य: सदान्तर्मुखपरिणत्या परमकलाधारमत्यपूर्वमात्मानं ध्यायति तस्य नित्यं प्रत्याख्यानं भवतीति।

तथा चोक्तं समयसारे ह्न

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।

तथा समयसारव्याख्यायां च ह्न

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्त-सम्मोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।

तथाहि ह्न

अब निम्नानुसार निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार कहा जाता है—कि जो निश्चयप्रत्याख्यान सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य की विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड की शोभा समान है, समस्त कर्मों की निर्जरा के हेतुभूत है, मोक्ष की सीढ़ी है और मुक्तिरूपी स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट है।

यहाँ गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है:—

भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे॥९५॥

अन्वयार्थ : [सकलजल्पम्] समस्त जल्प को (-वचनविस्तार को) [मुक्त्वा] छोड़कर और [अनागतशुभाशुभनिवारणं] अनागत शुभ-अशुभ का निवारण [कृत्वा] करके [यः] जो [आत्मानं] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [प्रत्याख्यानं] प्रत्याख्यान [भवेत्] है।

टीका : यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है।

यहाँ ऐसा कहा है कि—व्यवहारनय के कथन से, मुनि दिन-दिन में भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त अन्न, पान, खाद्य और लेह्य की रुचि छोड़ते हैं; यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है। निश्चयनय से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के *प्रपंच के परिहार द्वारा शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना सो प्रत्याख्यान है। जो सदा अन्तर्मुख परिणमन से परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है, उसे नित्य प्रत्याख्यान है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

---

* प्रपंच=विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से—उस भावना के सेवन की कृपा से—भावकर्मों का तथा द्रव्यकर्मों का संवर होता है।)

(वीरछन्द)

मुझसे भिन्न भाव सब पर हैं - ऐसा जब जाने जो ज्ञान।
उनको त्याग करे वह तब ही अतः वही है प्रत्याख्यान॥

[गाथार्थ :] 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'—ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है (अर्थात् अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है) ऐसा नियम से जानना।

इसी प्रकार समयसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में भी (२२८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

जिसका मोह विनष्ट हुआ भावी कर्मों को तजने से।
चेतनमय निष्कर्म आत्मा में, वरतूँ नित आत्मा से॥

[श्लोकार्थ :] (प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहता है कि—) भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके (-त्यागकर), जिसका मोह नष्ट हुआ है ऐसा मैं निष्कर्म (अर्थात् सर्व कर्मों से रहित) चैतन्यस्वरूप आत्मा में आत्मा से ही (-स्वयं से ही) निरन्तर वर्तता हूँ।

गाथा-९५ पर प्रवचन

अब निम्नानुसार निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार कहा जाता है—कि जो निश्चयप्रत्याख्यान... आहाहा! आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप में रमे, वह प्रत्याख्यान है। उसका नाम प्रत्याख्यान। ज्ञान, ज्ञानरूप से रहे; जो उसके गुण हैं; वह गुण, गुण की पर्याय में गुणरूप से रहे और अवगुणरूप से न हो, वह इसका प्रत्याख्यान है। विकाररूप न हो, मिच्छामि दुक्कडम् विकल्प, इसरूप भी न हो। तब इसे राग का त्याग और ज्ञान का स्थिर होना, ऐसा प्रत्याख्यान तब कहने में आता है। अरे! एक-एक बात में अन्तर है। प्रतिक्रमण अलग, प्रत्याख्यान अलग, पच्चक्खाण... यह तो सवेरे लड़कियाँ प्रत्याख्यान करे। पंच रंगी सामायिक। पाँच सामायिक एक आसन से करे। लो, अष्टमी का उपवास करे। तीन दिन और तीन रात। जागते हुए, सोना नहीं और उपवास करे। बड़ी तपस्या। आहाहा! बापू!

यह सब तो क्रियाकाण्डरूप है। यह धर्म में नहीं है। यह सब शुभभाव की क्रिया है। वह शुभभाव तो घोर संसार का मूल है। आहाहा! ऐसा कठिन काम।

यह कहते हैं कि **निश्चयप्रत्याख्यान...** सच्चा प्रत्याख्यान **सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य की...** पूर्ण प्रव्रज्या अर्थात् चारित्रदशा, चारित्र प्रव्रज्या, दीक्षा चारित्र। उसमें साम्राज्य वह पूर्ण संयम का साम्राज्य है, उसकी **विजय-ध्वजा...** विजय पताका। मेरी विजय हुई। आहाहा! अब मोक्ष में जाने के लिए तैयारी हुई। जिसे प्रत्याख्यान प्रगट हुआ, उसे मोक्ष जाने की तैयारी हो गयी। विजय ध्वजा फहरायी। **विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड...** विजय-ध्वजा का विशाल दण्ड बड़ा होता है न... आहाहा! उसकी **शोभा समान है,...** प्रत्याख्यान। आहाहा!

सकल प्रव्रज्यारूप... चारित्र की **विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड की शोभा समान है, समस्त कर्मों की निर्जरा के हेतुभूत है,..** आहाहा! प्रत्याख्यान तो कर्म की निर्जरा करता है। उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। **मोक्ष की सीढ़ी है...** वह प्रत्याख्यान मोक्ष की सीढ़ी, श्रेणी है, निसरणी है। मोक्ष की निसरणी प्रत्याख्यान है। आहाहा! वस्तु जो पूर्ण भरी हुई है, ज्ञान आनन्द आदि अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड भरा है, उसमें एकाग्रतारूपी धारा बहती है। वह पूर्ण विजय की धारा है। आहाहा! वह **मोक्ष की सीढ़ी है और मुक्तिरूपी स्त्री के...** आहाहा! मुक्ति में अतीन्द्रिय आनन्द है। मोक्ष में क्या है? अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द है। तो संयम में क्या है? कि वह अतीन्द्रिय आनन्दरूपी स्त्री की पहली भेंट है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दरूपी स्त्री की पहली भेंट है। संयम में अतीन्द्रिय आनन्द विशेष आता है।

प्रत्याख्यान में राग का अभाव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव विशेष आता है, वह मोक्ष में जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका कारण जो यह मोक्षमार्ग, वह मोक्षरूपी स्त्री की पहली भेंट है। आहाहा! आचार्य के शब्द भी कैसे हैं! **स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट है।** देखा? आहाहा! प्रथम दर्शन की भेंट है। जैसे लोग विवाह करे और पहली रात्रि को उसके दर्शन करें और भेंट करें भेंट; उसी प्रकार यहाँ कहते हैं। अन्दर में संयम, प्रत्याख्यान आनन्दस्वरूप भगवान की खिलावट करके वह अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, वह मोक्षरूपी स्त्री की भेंट है। अतीन्द्रिय आनन्द का वहाँ साक्षात्कार आता है। मोक्ष में पूर्ण आनन्द प्रगट होगा। आहाहा! इसका नाम प्रत्याख्यान कहते हैं। यह तो सुना भी न हो।

यह करो.. यह करो.. यह प्रत्याख्यान करो। कन्दमूल नहीं खाना, हरितकाय प्रत्येक में मर्यादा करो। पाँच ही खाना... नहीं खाना, अमुक नहीं खाना, यह नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, छह परबी कन्दमूल नहीं खाना। करो प्रत्याख्यान। यह प्रत्याख्यान मानता है। यह तो राग है। आहाहा! प्रत्याख्यान तो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की भेंट हो। तो अतीन्द्रिय आनन्द कब आवे? कि राग का विकल्प जहाँ न हो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द ऐसी जो स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट। यह प्रथम आनन्द की भेंट होती है। आहाहा! उसे यहाँ प्रव्रज्यारूप प्रत्याख्यान कहते हैं। अब ऐसी व्याख्या। प्रतिक्रमण अलग, प्रत्याख्यान अलग। आहाहा! दुनिया से अलग बात है।

पहली गाथा

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स।।९५।।

भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे॥९५॥

आहाहा! इसकी टीका **यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है।** सच्चे प्रत्याख्यान में स्वरूप का कथन। खोटे प्रत्याख्यान तो अनन्त बार किये हैं। आहाहा! और माना कि हम प्रत्याख्यानी हैं और प्रत्याख्यान किया है। चौविहार है-चार प्रकार का आहार रात्रि में नहीं करना। इसका प्रत्याख्यान है। कन्दमूल नहीं खाना, इसका प्रत्याख्यान है। छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, यह इसका प्रत्याख्यान है। ये सब प्रत्याख्यान नहीं, ये तो सब विकल्प हैं। आहाहा! राग है। आहाहा! शरीर, वह स्त्री के संसर्ग में नहीं आया, वह तो जड़ की पर्याय में आया। उसमें ब्रह्मचर्य कहाँ आया? शरीर स्त्री के संसर्ग में आया, वह विषयभाव है। नहीं आया, उसमें शुभभाव है। संसर्ग में शरीर नहीं आया, वह तो शुभभाव है। वह कोई प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है।

यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है। यहाँ ऐसा कहा है कि—व्यवहारनय के कथन से, मुनि दिन-दिन में भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त... हमेशा आहार करके। दिन-दिन में **भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त अन्न, पान, खाद्य और लेह्य...** कोई भी चीज़। सब चीज़ की **रुचि छोड़ते हैं;...** आहार करके, फिर

सब आहार की रुचि छोड़ते हैं। **रुचि छोड़ते हैं;...** ऐसा कहा। आहाहा! **यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है।** वह तो शुभभाव है। मूल प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! वह शुभभाव है। ऐसा आता अवश्य है। निश्चय नहीं, सच्चा प्रत्याख्यान नहीं। आहाहा!

यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है। निश्चयनय से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के प्रपंच के परिहार द्वारा... शुभ और अशुभ, वचन और भाव दोनों के **प्रपंच के परिहार द्वारा... प्रपंच=विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से—उस भावना के सेवन की कृपा से—भावकर्मों का तथा द्रव्यकर्मों का संवर होता है।)** आहाहा! वह ज्ञानस्वभाव वस्तु चिद्घन प्रभु है। अनाकुल ज्ञान और आनन्द का समुद्र है। उसमें रमणता करना, एकाकार करना... आहाहा! शुद्धज्ञान को भाना, उस शुद्धज्ञान को भाना, उस शुद्धज्ञान में एकाग्रता करना और पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़ना, उस शुद्धज्ञान में एकाग्रता की भावना वह प्रत्याख्यान है। आहाहा!

यहाँ तो कहे, बाहर का यह किया, छोड़ा। दो-पाँच सामायिक की, सवेरे-शाम प्रतिक्रमण किया। फिर एक-दूसरे को क्षमा करे। जिसके साथ क्षमा योग्य हो, उसे क्षमा करे। क्षमा के विरुद्ध हो उनके सामने देखे नहीं। आहाहा! यह सब शुभभाव है। यह कहीं प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! प्रत्याख्यान तो यह है। भले-प्रशस्त और अप्रशस्त। **समस्त वचनरचना के...** आहाहा! भाषा से प्ररूपणा करना, वह भी एक शुभभाव है। भाषा तो भाषा से होती है। भाषा आत्मा से नहीं होती। भाषा की रचना आत्मा से नहीं होती। भाषा की रचना परमाणु के उस काल में उस पर्याय होने का काल-स्वकाल है, इसलिए भाषावर्गणा में से भाषा होती है। आत्मा से नहीं। आत्मा में कुछ बोलो, इसलिए भाषा होती है, ऐसा नहीं है।

भाषावर्गणा, वह जड़ परमाणु है। उनकी पर्याय होने के काल में भाषावर्गणा (से) होती है, आत्मा से नहीं। इस उपदेश के वाक्य आत्मा से नहीं। आहाहा! लिखने के वाक्य आत्मा से नहीं। वह तो शब्द की रचना है। भाषा परमाणु की रचना है। आत्मा उसकी (भाषा की) रचना नहीं कर सकता। आत्मा बोल नहीं सकता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह फिर कहा न, भला या बुरा **समस्त वचनरचना...** भली प्ररूपणा की रचना हो या दूसरी कोई हो,

वह सब रचना छोड़कर... आहाहा! प्रत्याख्यान-प्रशस्त बोलना, वह प्रशस्त शुभभाव, वह कोई प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम। अपूर्व बात है, भाई! वीतराग के घर की बात अपूर्व है। सम्प्रदाय में भी सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह करो... यह करो... यह करो... इसमें सेठ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। हमने किया, इसने किया, इसने उपवास किये, इसने यह किया। आहाहा! आंकड़िया में कहीं हुआ था न? एक बार बहुत वर्ष पहले। किसी ने किया होगा। अपवास, अट्ठम को कुछ। बहुत वर्ष की बात है। अपवास और तपस्या करे, इसलिए.. ओहोहो! भारी तपस्या की, भारी उपवास किये। बहुत वर्ष पहले की बात है। लगभग ७०-७१ वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? इतने वर्ष हुए। किसी ने आंकड़िया में अपवास किये थे। बहुत वर्ष की बात है। (विक्रम संवत्) ७० में आंकड़िया गये थे न? ७० के वर्ष में मागसर महीने में पहले आंकड़िया गये थे। यह मागसर है न? मागसर शुक्ल ९। यह दीक्षा को ६७वाँ वर्ष लगा। वह दीक्षा लेकर तुरन्त ही उस दामनगर होकर आंकड़िया आये थे। इतने वर्ष हुए। उस गाँव में किसी ने पच्चीस उपवास किये थे। पर्यूषण में किसी ने पच्चीस उपवास किये। फिर उसने धाम-धूम की थी।... ओहोहो! आहाहा! किसे कौन करे? बापू! एक विकल्प उठाना, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का विकल्प उठाना, वह भी आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के प्रपंच... यह प्रपंच कहा, देखा? **विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से...)** आहाहा! भावना के सेवन से कषाय... शुद्धज्ञान... शुद्धज्ञान... शुद्ध चैतन्य। पुण्य-पाप के रागरहित शुद्ध चैतन्यद्रव्य, शुद्ध चैतन्यद्रव्य वस्तु है, उसकी सेवना, उसकी एकाग्रता, उससे द्रव्यकर्म और भावकर्म का नाश होता है। आहाहा! यहाँ तो अपवास किया, इसलिए निर्जरा कहलाये। अपवास अर्थात् तप, तप अर्थात् निर्जरा। तपस्या से निर्जरा होती है। धूल में भी नहीं। वह तपस्या नहीं है। यह तपस्या तो 'तपन्ते इति तपः' अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान... जैसे सोने को गेरु लगाकर सोना शोभता ओपता है, इसी प्रकार अन्दर शान्ति से आनन्द से पर्याय में ओपे। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति से पर्याय में ओपे-शोभे, उसे प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐसी बातें हैं। सब बात में अन्तर। आहाहा!

शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा... आहाहा! शुद्धज्ञानभावना की। भावना

शब्द से (आशय) एकाग्रता है, हों! यहाँ। शुद्धज्ञान जो अकेला चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह शुद्धज्ञान का अवतार प्रभु भगवान अनादि-अनन्त शुद्धज्ञानस्वरूप, ऐसे शुद्धज्ञान की भावना अर्थात् एकाग्रता की **सेवा के प्रसाद द्वारा...** उसकी सेवा के। देखो! सेवा तो आयी। आत्मा की सेवा। पर की सेवा तो कोई कर नहीं सकता। देव-गुरु-धर्म की सेवा का भाव, वह सब शुभभाव है। वह कहीं धर्म और निर्जरा नहीं है। आहाहा! आत्मा की सेवा। आत्मा को जाने बिना सेवा किसकी करे? आहाहा! अन्दर आत्मा कौन है? इस चीज़ में यह सब ज्ञात होता है। जाननेवाला स्वयं ही ज्ञेय है, ज्ञाता है और ज्ञान है। आहाहा!

सवेरे आया नहीं था? जाननेवाला स्वयं भगवान आत्मा, स्वयं को जानता है, स्वयं ही ज्ञेय है, स्वयं ही ज्ञान है और स्वयं ज्ञाता है। ऐसी जो अभेद आत्मा की रमणता, उसका नाम आत्मा की सेवा है। आहाहा! पर की सेवा तो कर नहीं सकता। भगवान आदि की सेवा करे, वह शुभराग है। आहाहा! बहुत कठिन काम। कठिन अर्थात् अपूर्व। पूर्व में नहीं किया हुआ। पूर्व में वास्तव में नहीं सुना हुआ, रुचिपूर्वक सुना हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, शुद्ध चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का पाट (शिला) है। जैसे पचास मण की बर्फ की शिला होती है, वैसे यह अरूपी अनन्त गुण की शिला है। उसे अन्दर सेवा करना, एकाग्रता करना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! व्यवहारवालों को कठिन लगता है। व्यवहार में पकड़नेवाले को यह और निश्चय... निश्चय... ... करे। व्यवहार करते-करते निश्चय आयेगा या सीधे ...निश्चय आ जाता होगा? यह तो कहा था व्यवहार का फल। प्रतिक्रमण का विकल्प आवे परन्तु उसे छोड़कर अन्दर में जाना, यह उसका परिणाम है। प्रतिक्रमण का व्यवहार विकल्प आवे अवश्य; व्यवहार का प्रतिक्रमण का विकल्प आवे परन्तु छोड़कर अन्दर में निर्विकल्प में जाना, इसका नाम प्रतिक्रमण है तो उस व्यवहार को व्यवहार कहने में आता है; नहीं तो व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहाहा!

सेवा के प्रसाद द्वारा... शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा। शब्द बहुत संक्षिप्त। शुद्धज्ञान त्रिकाली स्वभाव, ध्रुवस्वभाव भगवान की सेवा, उसकी भावना की **सेवा के प्रसाद द्वारा...** उसकी एकाग्रता की सेवा के प्रसाद द्वारा... आहाहा! **जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना, सो प्रत्याख्यान है।** आहाहा! यहाँ तो यह जरा त्याग किया तो संवर हो गया, जाओ। त्याग किया तो संवर हुआ। आहाहा! यहाँ तो

कहते हैं, द्रव्यकर्म और भावकर्म का संवर सेवना के भाव अर्थात् प्रसाद द्वारा हुआ। आहाहा! संवर हुआ, तब उसे विकल्प रुक गया।

निर्विकल्प वस्तु वीतरागी आत्मा है। उसमें अटका, उसकी सेवा में एकाकार रहा, तब उसे विकल्प और कर्म का नाश हुआ। इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! ऐसा प्रत्याख्यान है, ऐसा सुना नहीं होगा। प्रत्याख्यान सीधासट ऐसा था। बाहर से यह प्रत्याख्यान किया। आहाहा! **सो प्रत्याख्यान है।** संवर होना, वह प्रत्याख्यान है। शुद्धज्ञान, आनन्द, अतीन्द्रिय शुद्धस्वभाव की एकाग्रतारूपी भाव के प्रसाद द्वारा द्रव्यकर्म और भावकर्म का रुकना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। इसमें राग भी नहीं आता, शुभभाव भी इसमें नहीं आता। शुभभाव, वह अप्रत्याख्यान है। आहाहा! राग है। यह तो यहाँ का कुछ ग्रन्थ नहीं है यह।

यह सोनगढ़ का शास्त्र नहीं है। यह तो पहले का अनादि का है। मुनिराज का बनाया हुआ है, और मुनि तो ऐसा कहते हैं कि इसकी टीका मैं नहीं करता। इसकी टीका तो गणधरों ने की है, वह टीका यह होती है। मैं करनेवाला कौन? यह टीका की, वह तो गणधरों-सन्तों ने की है। परम्परा वीतराग से तीर्थंकर के वजीर जो गणधर हैं, दीवान-केवलज्ञानी के दीवान हैं। आहाहा! उन्होंने टीका की है। हम यह टीका करनेवाले कौन? ऐसा कहते हैं, देखो! आहाहा! इसीलिए यह सब अभी का बनाया हुआ है और उनका बनाया हुआ है, ऐसा नहीं। ठेठ गणधरदेव से इसकी टीका चली आती है। आहाहा! सुनने में पहले-पहले आया हो, इससे वस्तु कहीं नयी है, ऐसा नहीं है। यह गणधर से चली आती है। आहाहा!

पहले शब्द में है न? पहली गाथाएँ हैं न? शुरुआत की गाथाएँ—पाँचवाँ बोल (कलश) है। तीसरा पृष्ठ पाँचवाँ बोल। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित...** यह सब टीका गणधर से रचित है। आहाहा! तुम्हें ऐसा कि नयी लगे और अभी के पंचम काल के साधु का बनायी हुई है, ऐसा नहीं। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** और गणधर के पश्चात् भी आचार्य हुए, उन्होंने भलीभाँति व्यक्त / प्रगट की है। इसकी टीका स्पष्ट की है। आहाहा! परम्परा से गणधरों से लेकर आचार्य हुए। आहाहा! है?

श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये.... जैसा है, उस प्रकार से

प्रगट की गयी टीका है। आहाहा! जरा भी कुछ फेरफार नहीं है। आहाहा! **इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में...** ऐसे परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में **हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** टीकाकार मुनि स्वयं कहते हैं। **हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** आहाहा! इसकी टीका तो ठेठ से चली आती है। गणधरों से, परम्परा आचार्यों से चली आती है। तुम्हें ऐसा लगे कि यह नया है और यह है। कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि मैंने मेरे लिए बनाया है। एक तो इसके अर्थ गणधर से चले आते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, मैंने मेरे लिए बनाया है। आहाहा! यह वह शास्त्र है। आहाहा!

जो सदा अन्तर्मुख परिणमन से... आहाहा! प्रत्याख्यान तब होता है कि **जो सदा अन्तर्मुख परिणमन...** अन्तर्मुख परिणमन। अन्तर आत्मा जो द्रव्य आत्मा वस्तु पड़ी है, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार भगवान, वह अन्तर्मुख हुई परिणति से... आहाहा! है ? **अन्तर्मुख परिणमन से परम कला के आधाररूप...** आहाहा! केवलज्ञान की कला के आधाररूप यह। परम कला केवलज्ञान। वह इससे इस कला से केवलज्ञान मिलता है। आहाहा!

परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है,... आहाहा! परम कला का आधार ऐसा अति-अपूर्व आत्मा, उसे जो ध्याता है, ध्यान करता है। **उसे नित्य प्रत्याख्यान है।** है ? आहाहा! एक-एक लाइन कठिन। सुनने का मिले नहीं। अकेली बाहर की बातें, उसमें प्रभु एक ओर अन्दर रह गया। अकेले विकल्प की, शरीर की, वाणी की, यह छोड़ा, लिया, छोड़ा... अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, भगवत्स्वरूप विराजता है। उसके सन्मुख तो कभी देखा नहीं। उसका आदर कभी किया नहीं, उसे लक्ष्य में लिया नहीं। उसके बिना विकल्प की बातें, वह सब संसार है। चार गति में भटकने का साधन है। आहाहा!

परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा... आहाहा! अति-अपूर्व। पूर्व में कभी भाया नहीं। ऐसा जो **अति-अपूर्व आत्मा...** उसे जो ध्यावे-ध्यान करता है। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश का पूर, चैतन्य चमत्कार से भरपूर भगवान आत्मा को उस परम कला का आधार है वह... आहाहा! सब परम कला वहाँ से प्रगट होती है। दुनिया की कला तो सब अज्ञान की है। यह आत्मा की कला अन्दर जो ज्ञान की, आनन्द की सब, उस **परम**

कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है,... ध्यान करता है। **उसे नित्य प्रत्याख्यान है।** आहाहा! उसे हमेशा प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐसा तो कितनों ने सुना नहीं होगा। वाड़ा के बन्धन में बाहर की बातें करे, यह करे। अन्दर भगवान अपूर्व आनन्द का नाथ... आहाहा! उसकी सेवा, उसके आधार से आत्मा का ध्यान, वह नित्य प्रत्याख्यान है। आहाहा!

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— गाथा है न?

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।

आहाहा! क्या कहते हैं? **'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'...** दया, दान आदि रागादि का विकल्प, वह सब परद्रव्य है, पर है; स्वद्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसा **'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'—ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है...** यह राग का त्याग... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। अनन्त गुण का पिण्ड, उस गुणरूप रहना, वह आत्मा है, वह प्रत्याख्यान है। गुण है, उसरूप रहे, वह प्रत्याख्यान है। राग का त्याग तो नाममात्र है। आहाहा! राग का त्याग करना वह भी नाममात्र है। है?

(अर्थात् अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था...) ज्ञान अर्थात् आत्मा में निर्मल अवस्था, वीतरागी अवस्था **(ही प्रत्याख्यान है), ऐसा नियम से जानना।** विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)